साहित्य में शिक्षा विमर्श की रूपरेखा

• दिनेश कर्नाटक

साहित्य की विषयवस्तु के बारे में कहा जाता है कि आसमान के नीचे जो भी चीजें मौजूद हैं, वे सब साहित्य का विषय हो सकती हैं। इस बात का विस्तार करते हुए हम कह सकते हैं कि मनुष्य की कल्पना जहाँ तक जा सकती है, वह सब साहित्य का विषय हो सकता है। मगर हमें ध्यान रखना होगा कि साहित्य रचना के केन्द्र में मानव मूल्य होते हैं तथा जीवन-जगत के सत्य से साक्षात्कार कराना उसका उद्देश्य होता है। सत्य सुंदरता का पर्याय होता है। अत: जीवन सौन्दर्य से साक्षात्कार साहित्य रचना के मूल में होता है। कवियों व लेखकों द्वारा विषयवस्तु के चयन में युग विशेष की सत्ता व आर्थिक संरचना का भी असर पड़ता है। तभी हिन्दी साहित्य के किसी काल विशेष में हम वीर गाथाओं, कभी भक्ति कविताओं, कभी रीति संबंधी साहित्य, कभी कल्पनापरक साहित्य, कभी आदर्शवादी साहित्य तो कभी यथार्थवाद की केन्द्रीयता देखते हैं। इस तरह की विविधता व बदलाव सभी भाषाओं के साहित्य में देखने को मिलता है। युग के अनुसार जिस तरह का बदलाव हम विषयवस्तु में देखते हैं, उसी तरह का बदलाव साहित्य के उद्देश्य में भी देखने को मिलता है। कभी साहित्य का उद्देश्य अपने भावों व विचारों की अभिव्यक्ति तक सीमित था, कभी वीरता व युद्ध के लिए प्रेरित करना, कभी ईश्वर की आराधना या भक्ति भाव को प्रकट करना, कभी सौन्दर्य का वर्णन करना, कभी मनोरंजन करना, कभी नीति या आदर्श की शिक्षा देना, कभी मनुष्य जीवन के विलक्षण क्षणों को प्रकट करना, कभी जीवन मूल्यों के प्रति संवेदित करना, कभी जीवन के क्रूर यथार्थ का प्रकटीकरण, कभी जीवन की विडंबनाओं व अंतर्विरोध को सामने लाना, कभी जीवन चरित्रों, घटनाओं तथा स्थितियों में निहित सुंदरता को प्रकट करना, कभी किसी सामाजिक सरोकार के प्रति जागरूक करना। कुल मिलाकर साहित्य कला, शिल्प, संवेदना, विचार, सौन्दर्य, मनोरंजन तथा सरोकार की जुगलबंदी होता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य आरंभ से ही विमर्शमूलक रहा है। इसने हमेशा गरीबी, शोषण, अन्याय, गैरबराबरी, धर्मांधता, सांप्रदायिकता, अज्ञान, स्त्री, दलित आदि विमर्शों को अपने केन्द्र में रखा है। इस तरह से यह लोकतांत्रिक तथा आधुनिक जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयासरत रहा है। प्रकारांतर से यह सभी मुद्दे शिक्षा के मुद्दे हैं। लेखक अपनी रचना में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से लोक शिक्षण इसलिए करता है, क्योंकि हमारे समाज में आधारभूत मानवीय मूल्यों की समझ व व्यवहार के अभाव के उदाहरण हर तरफ देखने को मिलते हैं, इसलिए हमारा साहित्य भाव, विचार तथा जीवन सौन्दर्य की तलाश या अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है। ऐसे में सवाल उठता है कि जब साहित्य शिक्षा का ही अंग है तो साहित्य में शिक्षा विमर्श का क्या अर्थ है ? जब साहित्य में शिक्षा शास्त्र के किसी मुद्दे को उठाया जाये, जब शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न अंगों जैसे बच्चों, स्कूल, शिक्षक, पाठ्यक्रम, शिक्षा दर्शन, शिक्षा शास्त्र या शिक्षा की सैद्धांतिकी आदि पर बात की जाये तो इसे हम शिक्षा विमर्श कहेंगे।

दूसरा सवाल उठेगा कि साहित्य में शिक्षा विमर्श की क्या आवश्यकता है, पहले ही साहित्य में विमर्शों की कमी है, जो शिक्षा विमर्श भी आरंभ किया जाये। इस संबंध में यही अनुरोध है कि किसी देश या समाज के साहित्य में उन्हीं विमर्शों को जगह मिल पाती है, जिसमें कोई समाज या देश जड़ता अथवा गतिरोध का शिकार हो जाता है। हमारे साहित्य में सांप्रदायिकता, स्त्री, दलित व आदिवासी विमर्श इसलिए आये हैं क्योंकि इन मुद्दों पर हमारा समाज आगे बढ़ने के बजाय ठहराव का शिकार हो गया है। छह सौ साल पहले कबीर द्वारा धर्मांधता के खिलाफ आरंभ की गई तार्किक बहस के बावजूद दंगों तथा सांप्रदायिक विद्वेष में आज भी कमी नहीं आई है। स्त्री को देवी का दर्जा देने वाले समाज का आज भी सच यह है कि अपनी माँ-बहन को बुरी नजर से देखने वाले इंसान से लड़ने-मरने को तैयार हो जाने वाला आदमी घर के बाहर दूसरों की माँ-बहनों को अलग नजर से देखने लगता है। जीव विज्ञान द्वारा शारीरिक रचना को समझ लेने तथा यह साबित हो जाने के बाद की मनुष्य व मनुष्य में कोई अंतर नहीं है (जन्म के आधार पर) किसी व्यक्ति को अछूत मान लिया जाता है।

शिक्षा विमर्श का केन्द्रीय बिन्दु यह है कि शिक्षा को हमेशा बेहतर मनुष्य के निर्माण की परियोजना के रूप में देखे जाने की जरूरत है। विद्यालय ज्ञान-विज्ञान तथा संस्कृति-साहित्य का सांस्कृतिक केन्द्र है। इसे ऐसी जगह होना चाहिए जहाँ से हमारी पीढ़ियाँ आनन्द, सहयोग, सृजन, शांति-सौहार्द, अहिंसा आदि उच्च जीवन मूल्यों को धारण कर समाज में प्रवेश करें। इसे हमारे संकटों तथा समस्याओं पर संवाद की जगह होना चाहिए ताकि समाज में सौहार्द व सामंजस्य उत्पन्न हो। हमारी वर्तमान शिक्षा सिद्धांत से प्रयोग की ओर जाती है, जबकि सभी सिद्धांत प्रयोगों के बाद अस्तित्व में आये हैं, अत: हमें प्रयोगों से सिद्धांत की ओर जाने की जरूरत है। ऐसा होने से शिक्षा गतिविधि आधारित तथा आनंददायक हो जायेगी। विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता होने के बजाय ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में सम्मिलित होंगे।

साहित्य में तथा सार्वजनिक जीवन में शिक्षा विमर्श की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि हमारे देश में शिक्षा बेहतर मनुष्य के निर्माण में योगदान देने के अपने उद्देश्य में असफल हो गई है। शिक्षा व्यक्ति व समाज का रूपांतरण करने में अक्षम साबित हो रही है। बच्चा जिस अंधविश्वास, रूढ़िवादी संस्कारों, पूर्वाग्रहों को लेकर स्कूल आता है, उनसे मुक्त होकर उदारवादी, समावेशी तथा लोकतांत्रिक नहीं हो पा रहा है। शिक्षा का अर्थ नौकरी पाने तक सीमित होने के कारण उसका महत्व व गरिमा न्यूनतम स्तर पर पहुँच गई है, इसलिए शिक्षा विमर्श की आवश्यकता है। कई लोगों को लगता है कि राजनीतिक सत्ता मानवीय, जनपक्षधर तथा सही मायने में लोकतांत्रिक हो जायेगी तो शिक्षा, स्वास्थ्य तथा संस्कृति आदि के सवाल स्वतः हल हो जायेंगे। इसमें कोई दो राय नहीं है कि राजनीति के बेहतर होने से सब चीजों पर फर्क पड़ता है, लेकिन सही शिक्षा का स्वरूप भी लोगों के सामने होना चाहिए। इतिहास का अनुभव बताता है कि यदि लोगों की चेतना मानवीय व्यवस्था के अनुरूप नहीं होती है तो ऐसी व्यवस्था के अंदर तथा बाहर मौजूद पिछड़ी चेतना के लोग उसे पीछे की ओर खींचने लगते हैं। इसीलिए राजनीतिक क्रांति के साथ एक सतत चलने वाले सांस्कृतिक व वैचारिक आंदोलन की जरूरत हमेशा बनी रहती है।

यह बड़े ही खेद का विषय है कि साहित्य में शिक्षा के सवालों पर बहुत कम लिखा गया है। जो लिखा भी गया है, वह शिक्षा व्यवस्था को इतनी दूर से देखा हुआ होता है कि उससे कोई विमर्श खड़ा नहीं हो पाता। अधिकांश लेखक शिक्षक-शिक्षिकाओं को ही शिक्षा व्यवस्था का पर्याय समझ लेते हैं। उनकी स्थापनाओं से लगता है कि ये ठीक हो जायेंगे तो शिक्षा ठीक हो जायेगी। इस प्रकार शिक्षा विमर्श व्यक्तियों की भूमिका तक सीमित रह जाता है। यह भी समझना होगा कि शिक्षक-शिक्षिकाएँ इसी समाज से आते हैं तथा व्यक्ति केन्द्रित शिक्षा लेकर आते हैं, अतः उनके अच्छे-बुरे होने से व्यापक बदलाव नहीं होने वाला, बल्कि पूरी शिक्षा व्यवस्था जब तक मानवीय, उदार तथा प्रतियोगिता के बजाय सहयोगपूर्ण नहीं होगी तब तक बच्चों का रूपांतरण करने से रही।

शिक्षा विमर्श का केन्द्रीय बिन्दु यह है कि शिक्षा को हमेशा बेहतर मनुष्य के निर्माण की परियोजना के रूप में देखे जाने की जरूरत है। विद्यालय ज्ञान-विज्ञान तथा संस्कृति-साहित्य का सांस्कृतिक केन्द्र है। इसे ऐसी जगह होना चाहिए जहाँ से हमारी पीढ़ियाँ आनन्द, सहयोग, सृजन, शांति-सौहार्द, अहिंसा आदि उच्च जीवन मूल्यों को धारण कर समाज में प्रवेश करें। इसे हमारे संकटों तथा समस्याओं पर संवाद की जगह होना चाहिए ताकि समाज में सौहार्द व सामंजस्य उत्पन्न हो। हमारी वर्तमान शिक्षा सिद्धांत से प्रयोग की ओर जाती है, जबकि सभी सिद्धांत प्रयोगों के बाद अस्तित्व में आये हैं, अतः हमें प्रयोगों से सिद्धांत की ओर जाने की जरूरत है। ऐसा होने से शिक्षा गतिविधि आधारित तथा आनंददायक हो जायेगी। विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता होने के बजाय ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में सम्मिलित होंगे। प्रतियोगिता अथवा प्रतिस्पर्द्धा भी हमारी शिक्षा की बड़ी कमियों में से एक है। हमारी शिक्षा का ढाँचा इस तरह से बन गया है, जिसमें सहयोग तथा सामूहिकता के मूल्यों को प्रोत्साहित करने के बजाय एक-दूसरे से आगे बढ़ने या नंबर वन होने को महत्व दिया जाता है। जब शिक्षा ही आपस में मिलकर कार्य करने, खोजने-जानने की प्रेरणा देने के बजाय बच्चों के बीच में तुलना या होड़ को प्रोत्साहित करेगी तो समाज में भी सहयोग के बजाय संघर्ष की प्रवृत्ति फैलेगी। भय व हिंसा से न तो हम किसी को सुधार सकते हैं, न अनुशासित कर सकते हैं। दोनों शार्टकट हैं तथा शिक्षा में इनका प्रयोग हमारी अक्षमता, शिक्षा दर्शन से अपरिचय तथा धैर्य की कमी को दिखाता है। भय व हिंसा दोनों तात्कालिक समाधान हैं, स्थायी नहीं। विद्यार्थियों की किसी भी समस्या का स्थायी समाधान केस स्टडी तथा तर्कपूर्ण खोज व विश्लेषण से ही हो सकता है। भय व हिंसा बच्चों के कोमल मन को बुरी तरह से प्रभावित करते हैं तथा उनके भीतर हमेशा के लिए हीनता बोध भर देते हैं, जिससे उबरना उनके लिए जीवनभर मुश्किल हो जाता है तथा उनका स्वाभाविक विकास अवरूद्ध हो जाता है। इस दिशा में सीबीएससी द्वारा पिछले वर्ष स्कूलों को 'नो एंगर जोन' बनाने की पहल सराहनीय है। स्कूलों में गुस्से का क्या कार्य है? लेकिन विद्यालयों को क्रोध रहित क्षेत्र हम तभी बना पायेंगे, जब शैक्षणिक व विद्यालय प्रशासन इसे अपने ऊपर लागू करे। यदि समाज में, शासन-प्रशासन में क्रोध नहीं होगा तो बच्चों तक नहीं पहुँचेगा। यदि शिक्षक-शिक्षिकाओं व बच्चों को क्रोध का सामना करना पड़ेगा तो वह स्कूल तक पहुँचेगा।

हमारी शिक्षा के सामने एक बड़ी चुनौती माध्यम भाषा का सवाल भी है। अफसोस की बात है कि त्रिभाषा फार्मूले की स्वीकार्यता के बावजूद अंग्रेजी मीडियम तथा भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा का सवाल बना हुआ है। शिक्षा के बाजारीकरण ने तो इस समस्या को और भी जटिल बना दिया है। यहाँ तक कि माध्यमिक स्तर पर एक विषय के रूप में भाषा विषय को कम्प्यूटर के सामने खड़ा कर समाप्त करने की शुरूआत हो चुकी है। यह स्कूलों को कला-संस्कृति, खेल, संगीत आदि से मुक्त करने का अभियान है। वर्तमान स्कूली शिक्षा में बाजारीकरण के चलते बच्चों पर अच्छे नंबरों को पाने, रटने आदि का दबाव है। शिक्षक-शिक्षिकाओं के कार्य की स्थितियाँ व उनके शोषण के मामले हैं। इसके अलावा लैंगिक असमानता, जाति, भाषा, भ्रष्टाचार आदि कई मुद्दे हैं, जिन पर बात नहीं हो पाती है।

पिछला अंक हम लोगों ने शिक्षा के सवालों पर हिन्दी की चर्चित कहानियों पर एकाग्र किया था। हिन्दी में यह अपने तरह की पहली कोशिश थी। पाठकों ने जिस तरह से इस अंक का स्वागत किया, वह हमारे लिए अभूतपूर्व अनुभव था। अभी भी देश के विभिन्न हिस्सों से इस अंक की माँग बनी हुई है। पिछले अंक में तकनीकी गड़बड़ी की वजह से प्रूफ की गलतियाँ चली गई थी, इसका हमें खेद है। प्रस्तुत अंक इसी शृंखला का अगला आयोजन है। इस अंक में हम शिक्षा के सवालों पर ताजा कहानियाँ दे रहे हैं, ताकि आज के कहानीकार शिक्षा के मुद्दों को कैसे देख रहे हैं तथा शिक्षा के वर्तमान सवाल क्या हैं, यह स्पष्ट हो सके। इस अंक की रूपरेखा एक वर्ष पूर्व हमने लेखकों व पाठकों के साथ साझा की थी। हमारे अनुरोध पर कहानीकारों व लेखक मित्रों ने विशेष रूप से इस अंक के लिए कहानियाँ, आलेख आदि लिखे। अपना बहुमूल्य समय देने के लिए हम आप सभी के हृदय से आभारी हैं। कई मित्रों ने शिक्षा विषयक कहानियाँ भी भेजी, लेकिन पूर्व में की गई घोषणा तथा स्थान की सीमा के चलते हम अन्य कहानीकारों की रचनाएँ नहीं ले पा रहे हैं। आगे के अंकों में उनका उपयोग करेंगे। पाठकों से अनुरोध है कि वे हमेशा की तरह अंक पर अपनी राय से अवश्य अवगत करायें।

❑❑❑